बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 200

नए भारत का श्रम बाजार

जानकारी के मुताबिक केंद्रीय श्रम एवं रोजगार मंत्री संतोष कुमार गंगवार ने औद्योगिक संगठनों और श्रम संगठनों को पत्र लिखकर उनसे कहा है कि देश की बढ़ती रोजगार समस्या को हल करने के लिए वे जरूरी नीतिगत बदलाव की मशविरा प्रक्रिया में शामिल हों। उनसे देश की महिला श्रमिकों की भागीदारी बढ़ाने की दिशा में भी सुझाव मांगे गए हैं। यह स्वीकारोक्ति अच्छी बात है कि देश में रोजगार तैयार करने पर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। सेंटर फॉर मॉनिटरिंग द इंडियन इकनॉमी के ताजा आंकड़े संकेत दे रहे हैं कि अकेले सितंबर माह में रोजगार के करीब 70 लाख नए अवसर बने। लेकिन राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण का संकेत समझें तो सन 1970 के दशक के बाद से देश में इतने बड़े पैमाने पर बेरोजगारी कभी नहीं आई थी। सर्वेक्षण ने इस आशंका की भी पुष्टि की है कि बहुत बड़े पैमाने पर महिलाएं श्रम शक्ति से दूरी बना चुकी हैं। मंत्रालय मौजूदा श्रम कानूनों को चार संहिताओं के माध्यम से तार्किक बना रहा है। दुख की बात है कि इसके बावजूद वास्तविक श्रम सुधार दूर बने हुए हैं। जबकि वास्तविक श्रम सुधार होने से नियोक्ताओं को कर्मचारियों को रखने और निकालने में कहीं अधिक सुविधा होगी। आशा की जानी चाहिए कि श्रम संगठनों तक मंत्रालय की पहुंच उन्हें ऐसे सुधारों को लेकर विश्वास में लेने की प्रक्रिया का हिस्सा है।

बहरहाल, मंत्रालय को इस दौरान अपनी अतीत की गलतियां भी सुधारनी चाहिए। देश के श्रम कानून कुछ इस तरह बने हैं कि वे श्रम संगठनों तथा उन लोगों को ही खुश करते हैं जो पहले से संगठित रोजगार में हैं। यह भी एक कारण है कि वे अत्यधिक प्रतिबंधात्मक हैं और इनके चलते विनिर्माण वृद्धि में ठहराव देखने को मिल रहा है। केवल अंदरूनी लोगों से बातचीत करने के बजाय सरकार को मशविरे का दायरा बढ़ाकर रोजगार चाहने वालों और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों को भी उसमें शामिल करना चाहिए। इससे वास्तविक श्रम सुधारों के पक्ष में माहौल बनेगा। व्यापक पहुंच न केवल शक्तिशाली निहित स्वार्थ वाले समूहों का प्रतिरोध करने में सहायक है बल्कि यह देश की अर्थव्यवस्था में आ रहे ताजातरीन बदलावों को भी दर्ज करेगी।

निवेश को लेकर धीमे माहौल में भी लॉजिस्टिक क्षेत्र में रोजगार के अनेक नए अवसर तैयार हो रहे हैं। इसमें इंटरनेट और अल्पकालिक रोजगार आधारित अर्थव्यवस्था सहायक साबित हो रही है। इन रोजगारों को पारंपरिक ढंग के संगठित रोजगार नहीं माना जा सकता। हालांकि इनकी नियोक्ता अक्सर बड़ी कंपनियां ही हैं जिनका नियमन किया जा सकता है। ये काफी हद तक उन अनुबंधित श्रमिकों की तरह हैं जिन्होंने उस जगह को भरना शुरू किया है जो कंपनियों द्वारा नियमित कर्मचारियों को नियुक्ति न देने की वजह से बनी थी। कंपनियों की इस अनिच्छा का संबंध मौजूदा श्रम कानूनों से जुड़ी अनिश्चितता से है। सरकार को ऐसे कामगारों तक पहुंचने का तरीका तलाशना चाहिए। यदि आवश्यक हो तो उन्हें संगठित किया जाना चाहिए ताकि वे अपने कल्याण को लेकर आवाज उठा सकें। इससे अर्थव्यवस्था की सटीक तस्वीर सामने आ सकेगी।

देश की अर्थव्यवस्था को संगठित स्वरूप प्रदान करने के पुराने लक्ष्य (नोटबंदी और जीएसटी इस दिशा में उठाए गए हालिया कदम हैं) की पूर्ति के प्रयास में अल्पकालिक रोजगार वाली उभरती अर्थव्यवस्था की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। हमें लाभ, संरक्षण और रोजगार निर्माण के लिए कहीं अधिक स्पष्ट और व्यापक रुख अपनाने की आवश्यकता है। यह अच्छी बात है कि प्रधानमंत्री कार्यालय श्रम कानून को तार्किक बनाने पर ध्यान दे रहा है। श्रम मंत्रालय को भी इस प्रक्रिया में शामिल होना चाहिए।

विनय सिन्हा

अब भी 19वीं सदी में अटके जल-उपयोग कानून

लोकप्रिय मगर गलत समझा गया नजरिया यह है कि पानी को केंद्रीय विषय बनाने से भारत के जल संसाधन का बेहतर प्रबंधन किया जा सकेगा। इसकी अहमियत बता रहे हैं **मिहिर शाह**

केंद्र सरकार की तरफ से भारत में पानी संबंधित कानूनों में तत्काल सुधार के लिए गठित समिति की मैंने वर्ष 2015 में अध्यक्षता की थी। भारतीय संविधान में पानी को राज्य का विषय बनाया गया है। भारत में यह धारणा काफी लोकप्रिय रही है कि पानी को केंद्रीय सूची का विषय बनाने से राष्ट्रीय जल संसाधनों का बेहतर प्रबंधन किया जा सकेगा लेकिन यह दोषपूर्ण नजरिया है। हमारी समिति ने इससे अलग रुख अपनाया। एक साझा एवं समान संसाधन के तौर पर पानी की अलग प्रकृति को देखते हुए और जल प्रबंधन की सभी सफल कोशिशों के आधार पर हमने आनुषंगिकता का सिद्धांत अपनाने की वकालत की जिसमें समाधान को समस्या के बेहद करीबी स्तर पर लाने की जरूरत होती है। लिहाजा जल प्रबंधन को हरसंभव स्तर तक विकेंद्रीकृत करने की जरूरत है, जल विवादों के समाधान में प्राथमिक हितधारकों को शामिल किया जाए और संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन में रेखांकित बिंदुओं को भी ध्यान में रखा जाए।

हालांकि उसी समय हमने यह भी माना कि हर दिन पानी को लेकर संघर्ष बढ़ने और सघन होने से साझा रवैये और सिद्धांतों के बारे में एक व्यापक राष्ट्रीय मसौदा बनाने की फौरी जरूरत है ताकि पानी का विवेकपूर्ण एवं सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण इस्तेमाल किया जा सके। इसी के साथ संदर्भ-आधारित विवरण में लचीलेपन की भी गुंजाइश रखनी चाहिए। संविधान का अनुच्छेद 249 संसद को यह अधिकार देता है कि राष्ट्रीय हित में वह राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है। इस तरह समिति ने राष्ट्रीय जल प्रारूप कानून (एनडब्ल्यूएफएल) का एक मसौदा तैयार किया। हमने बेहद सावधानी से यह प्रस्ताव रखा था कि एनडब्ल्यूएफएल को संविधान के अनुच्छेद 252(1) के तहत विहित प्रक्रिया का अनुसरण करेगा जिसके मुताबिक दो या अधिक राज्यों की विधानसभाएं इस तरह का कानून पारित कराने के लिए संसद को अधिकृत कर सकती हैं। यह एक प्रारूप कानून है और इसका मकसद जल प्रबंधन को केंद्रीकृत करना या पानी को लेकर संवैधानिक स्थिति बदलना नहीं है। इसके स्थान पर यह कानून पानी के संरक्षण, विनियमन और प्रबंधन के सिद्धांतों का एक व्यापक राष्ट्रीय विधिक ढांचा मुहैया कराता है। यह केंद्र, राज्य एवं स्थानीय शासन निकायों द्वारा विधायी एवं कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग को नियमित करेगा।

एनडब्ल्यूएफएल एक ऐसा नजरिया अपनाने पर जोर देता है जिसमें आम जनजीवन में पानी को केंद्रीय एवं बहुआयामी जगह दी गई है। यह कहता है, 'पानी भारत के लोगों की साझा विरासत है, अपने सभी रूपों में जीवन के वजूद के लिए आवश्यक है, पारिस्थितिकी प्रणाली का अभिन्न हिस्सा है, आजीविका के लिए बुनियादी जरूरत है, सफाई का एक एजेंट है, कृषि और उद्योग एवं वाणिज्य जैसी आर्थिक गतिविधियों का जरूरी अंग है, परिवहन एवं मौजमस्ती का एक साधन है, जन-समूह, समाज, इतिहास एवं संस्कृति का अविभाज्य अंग है, और कई संस्कृतियों में कुछ हद तक दैवीय मान्यता होने से इसे पवित्र भी माना जाता है।' अमूमन ऐसी सोच नदारद रही है लेकिन भारत में जल नीति एवं कार्यक्रमों का खाका तैयार करते समय इसे मार्गदर्शक माना जाना चाहिए।

यह कानून उच्चतम न्यायालय द्वारा पानी के बारे में दिए गए सभी अहम फैसलों को समाहित किए हुए है, जैसे कि सार्वजनिक न्यासिता का सिद्धांत और पानी के अधिकार की स्वीकृति। उच्चतम न्यायालय कह चुका है कि 'हमारी विधिक प्रणाली में सार्वजनिक न्यासिता सिद्धांत भी अधिकार-क्षेत्र का हिस्सा है। राज्य लोक-उपयोग एवं मनोरंजन के निमित्त सभी प्राकृतिक संसाधनों का न्यासी है।' सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा है कि पानी इंसानों के वजूद के लिए बुनियादी जरूरत है और अनुच्छेद 21 में निहित जीवन के अधिकार एवं मानवाधिकार का हिस्सा है। इस तरह एनडब्ल्यूएफएल के मुताबिक, पानी भारत के लोगों की साझा विरासत है, जल एवं सभी संबद्ध पारिस्थितिकियों के संरक्षण के लिए सार्वजनिक न्यास में निहित और सबके लिए तर्कपूर्ण निषेधों का विषय है। इसके अलावा राज्य पानी का सभी स्तरों पर जनता का सार्वजनिक न्यास है और सबके फायदे के लिए एक न्यासी के रूप में पानी को संरक्षित के प्रति आबद्ध है।

नतीजतन, एनडब्ल्यूएफएल पानी का मुद्दा 21वीं सदी में लेकर आता है जो पानी के बारे में उभरती वास्तविकता, समझ एवं नजरिये को परिलक्षित करता है। विश्वास करना मुश्किल हो सकता है लेकिन हमारा भूजल अब भी 19वीं सदी में बने ब्रिटिश कानूनों से संचालित होता है जिनके प्रावधान जल उपलब्धता में असमानता बढ़ाने और जल उपयोग में असंवहनीयता बढ़ाते हैं। पूर्ण प्रभुत्व का सिद्धांत भूस्वामियों को यह अधिकार देता है कि उनकी जमीन के नीचे का समूचा पानी उनका है। भूजल की कानूनी स्थिति जमीन की चल संपत्ति के बारे में कुछ ऐसी है: जमीन का स्वामित्व रखने वाले लोग उसकी खुदाई कर सकते हैं और अगर खुदाई के क्रम में वह अपने पड़ोसी के कुएं में जमा पानी को बिखेर देता है तो यह कृत्य चोट-रहित नुकसान के दायरे में ही आता है और उस आधार पर कार्रवाई नहीं की जा सकती है।

अब इसे जल-विज्ञान के जरिये अधिक बेहतर ढंग से समझा जा सकता है कि किसी भी भूखंड के नीचे मौजूद पानी को रिचार्ज के तौर पर नहीं निकाला जा सकता है। अधिकांश जलाशयों के रिचार्ज क्षेत्र उस जलभंडार स्थल का केवल एक हिस्सा भर होता है। इस तरह कई मामलों में किसी भी जमीन के नीचे बह रहे पानी को थोड़ा दूर स्थित जमीन से एक जलाशय को रिचार्ज करना होगा। जब कई लोग एक ही समय पर भूमिगत जल का दोहन करते हैं तो पंपिंग के अलग केंद्रों के बीच जटिल व्यवधान की स्थिति पैदा होने लगती है। भारत में यह बात काफी आम है क्योंकि यहां पर कुएं एक-दूसरे के काफी करीब स्थित हैं। जलस्तर में गिरावट इसी तरह आई है और इसके दुष्परिणामों के खिलाफ कोई विधिक संरक्षण उपलब्ध नहीं होने से करोड़ों लोगों की जिंदगी एवं आजीविका खतरे में पड़ गई है। इसीलिए हमारी समिति ने मॉडल भूजल संरक्षण प्रबंधन विधेयक 2016 का भी मसौदा तैयार किया था जिसमें एनडब्ल्यूएफएल के सिद्धांतों का ही इस्तेमाल किया गया है। यह तर्कसंगत उपयोग के सिद्धांत का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है कि अगर कोई व्यक्ति इस तरह से भूजल का इस्तेमाल कर रहा है कि दूसरे लोग पानी के अधिकार से वंचित हो जाते हैं तो उसे गैरकानूनी माना जाएगा।

इन कानूनी सुधारों एवं उपायों के बगैर हम पानी की अहमियत को लेकर किए गए बेहतरीन प्रयासों को नजरअंदाज कर सकते हैं। यह नया कानूनी परिप्रेक्ष्य भारत में जल प्रबंधन की दिशा में नवाचार लाने का आधार साबित हुआ है।

(लेखक शिव नाडर यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर और योजना आयोग के पूर्व सदस्य हैं)

सरकार के लक्ष्य और सीएसआर दायित्व के बीच बढ़ता तालमेल

जिंदगीनामा

कनिका दत्ता

देश के कॉर्पोरेट जगत में इस खबर से फैली बेचैनी साफ महसूस की जा सकती थी कि केंद्र सरकार एकल उपयोग प्लास्टिक (एसयूपी) से बने छह उत्पादों पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने की योजना से हाथ पीछे खींच रही है। भारतीय कंपनी जगत के सामाजिक दायित्व (सीएसआर) एजेंडे में प्लास्टिक पाबंदी चिंता की एक बड़ी वजह बनकर उभरी है। भारतीय कंपनियों में भले ही नवाचार, रणनीतिक विचारों या कामकाजी मानदंडों की कमी है लेकिन सीएसआर के मोर्चे पर वे बिना किसी चूक के एकदम मुस्तैद रही हैं। शायद इंडिया इंक के डीएनए में ही यह खासियत समाहित हो चुकी है कि वे रायसीना हिल्स से मिलने वाले संकेतों को समझने की कला में पारंगत हो चुके हैं।

गांधी जयंती पर एसयूपी से बने कप, प्लेट, बोतल, स्ट्रॉ, झोले एवं सैशे पर पाबंदी लगाने संबंधी नरेंद्र मोदी की घोषणा को व्यापक समर्थन मिला है। हवाईअड्डों और अन्य सार्वजनिक स्थानों ने अपने परिसरों को एसयूपी-रहित क्षेत्र घोषित करने में काफी तेजी दिखाई और बड़े विनिर्माताओं ने भी प्लास्टिक के पुनर्चक्रण संबंधी प्रयासों को मीडिया में लाने की पूरी कोशिश की। यह बड़ी तेजी से खतरनाक स्थिति में पहुंचती जा रही समस्या के बारे में तारीफ करने लायक है।

एसयूपी का उपयोग नहीं करने वाले सीएसआर कार्यक्रम आगे भी जारी रहेंगे। पूर्ण प्रतिबंध लगाने से परहेज करने की वजह यह है कि इससे एसयूपी आधारित उत्पादों के उत्पादन से जुड़े छोटे कारखानों में काम करने वाले लाखों कामगारों के बेरोजगार होने का खतरा पैदा हो जाता। अब केंद्र सरकार ने कहा है कि वह एसयूपी के इस्तेमाल में कमी लाने की दिशा में काम करेगी और इस क्रम में प्लास्टिक विनिर्माण इकाइयों को चरणबद्ध तरीके से इस अभियान का हिस्सा बनाने के प्रयास किए जाएंगे। इस तरह एक बार उपयोग वाले प्लास्टिक उत्पादों पर रोक का लक्ष्य धीरे-धीरे हासिल करने की कोशिश की जाएगी।

इंडिया इंक किस हद तक एसयूपी-रहित उत्पादों के अभियान में भागीदार बनता है, यह इससे तय होगा कि मोदी सरकार इस मसले पर कितना जोर देती है? सीएसआर कार्यक्रमों एवं प्रधानमंत्री की पसंदीदा योजनाओं के बीच करीबी रिश्ता उसी समय से एक पैटर्न बन चुका है जब पूर्ववर्ती संप्रग सरकार ने सीएसआर संबंधी कानून पारित कराया था।

एनजीओबॉक्स की तरफ से हर साल जारी होने वाली इंडिया सीएसआर आउटलुक की नवीनतम रिपोर्ट के मुताबिक 368 बड़ी कंपनियों के सीएसआर मद में किए गए व्यय का करीब तीन-चौथाई हिस्सा शिक्षा एवं कौशल विकास के अलावा पानी, स्वच्छता एवं साफ-सफाई संबंधी कार्यक्रमों में लगा था। एक साथ जोड़कर देखें तो यह कुल सीएसआर व्यय का करीब 61 फीसदी हिस्सा बनता है। गत चार वित्त वर्षों से यही सिलसिला चल रहा है।

संप्रग सरकार शिक्षा का अधिकार कानून लेकर आई थी और उससे प्रेरित होकर कंपनियों ने अपने सीएसआर व्यय के केंद्र में प्राथमिक शिक्षा को रखा था। कई कंपनियों ने खासकर लड़कियों को स्कूली शिक्षा देने पर ध्यान केंद्रित किया था जो तब खासे चलन में रहे 'महिला सशक्तीकरण' की अवधारणा से मेल खाता था। वहीं मोदी सरकार के समय शुरू हुए 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' और 'स्किल इंडिया' अभियान भी कंपनियों को इन कार्यक्रमों से जुड़ने का अवसर देते रहे हैं।

स्वच्छता गतिविधियों को बढ़ावा देने वाले सीएसआर कार्यक्रम मोदी के स्वच्छ भारत अभियान को गति देने में मददगार रहे हैं। मोदी सरकार का यह अभियान पूर्ववर्ती सरकार के समय चल रही भारत निर्माण शौचालय परियोजना को ही नए तरीके से बनाया हुआ रूप है। सरकार ने इसे पूरी शिद्दत से लागू कर खुले में शौच से पूरी तरह आजादी न सही, कम-से-कम काफी हद तक कमी लाने की कोशिश जरूर की है।

अगर कंपनियां अपने सीएसआर मद का इस्तेमाल शिक्षा, स्वच्छता एवं संबंधित गतिविधियों पर कर रही हैं तो इसमें नापसंद करने वाली कौन सी बात है? अगर इन परियोजनाओं को अलग-अलग रखकर देखें तो कोई भी कारण नहीं दिखता है। लेकिन इन कार्यक्रमों पर किए गए व्यय का पैटर्न देखने से पता चलता है कि ये कार्यक्रम कंपनी अधिनियम में 2014 में किए गए संशोधन के असली मकसद से मेल नहीं खाते हैं।

संप्रग सरकार ने सोचा था कि कंपनियों के मुनाफे का एक हिस्सा सीएसआर व्यय के लिए अनिवार्य करने से मध्य एवं पूर्वी भारत के पिछड़े इलाकों में बड़ी औद्योगिक परियोजनाओं से प्रभावित होने वाले लोगों को अपर्याप्त मुआवजा देने को लेकर हो रही आलोचना कम करने में मदद मिलेगी। लेकिन सीएसआर व्यय पर करीबी निगाह डालने से पता चलता है कि इसका बड़ा हिस्सा अपेक्षाकृत बेहतर विकसित पश्चिमी क्षेत्रों की तरफ ही लगा है। इसकी वजह यह है कि इस इलाके में ही कंपनियों का परिचालन अधिक होता रहा है।

सामाजिक विकास पर ध्यान देने के लिए कंपनियों को प्रोत्साहित कर संप्रग सरकार ने अपनी छवि को बड़ी कुशलता से सूट-बूट की सरकार के दंश से बचाकर रखा जबकि मोदी सरकार के पहले कार्यकाल पर लगातार इसके आरोप लगते रहे। शायद इसी वजह से राजग सरकार ने शुरुआती दौर में कंपनियों पर सीएसआर मद में व्यय नहीं करने को आपराधिक कृत्य करार देने की पहल कर दी थी। बहरहाल अब राजग सरकार ने समझदारी दिखाते हुए इसे अपराध की श्रेणी से बाहर रखने की घोषणा कर दी है लेकिन कंपनी जगत ने इसके पीछे छिपे संकेतों को समझ लिया है। इस साल बड़ी कंपनियों ने अपने निर्धारित सीएसआर व्यय से 63 फीसदी खर्च कर दिया है। अगले साल कॉर्पोरेट इंडिया अपनी सीएसआर जवाबदेही पर खरा उतरने में खुद को ही पीछे छोड़ सकता है। यह अलग सवाल है कि क्या इस तरह वाकई में भारत का चेहरा बदल पाएगा?

कानाफूसी

राष्ट्रवाद का सबक

कांग्रेस अपने नेताओं को राष्ट्रवाद के विषय पर प्रशिक्षण देने की योजना बना रही है। ऐसा इसलिए किया जा रहा है ताकि भारतीय जनता पार्टी ने वर्तमान में राष्ट्रवाद की जो परिभाषा गढ़ी है उसका मुकाबला किया जा सके। ये प्रशिक्षण सत्र राष्ट्रीय, राज्य, जिला और प्रखंड स्तर पर आयोजित किए जाएंगे। यह विचार पिछले महीने नई दिल्ली में पार्टी की राज्य इकाइयों के अध्यक्षों और कांग्रेस विधायी दल के नेताओं की बातचीत में निकल कर आया था। इन सत्रों में पार्टी के राष्ट्रवादी अतीत के अलावा अहम जमीनी मुद्दों पर मतदाताओं के साथ संपर्क करने पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। पार्टी का मानना है कि ये प्रशिक्षण सत्र 2019 के बाद अपना विश्वास गंवा चुके पार्टी कार्यकर्ताओं को नए सिरे से उत्साहित करने का काम करेंगे। आने वाले दिनों में कुछ राज्यों में विधानसभा चुनाव होने वाले हैं।

क्रिया-प्रतिक्रिया

कांग्रेस विधायक अदिति सिंह लगातार सुर्खियों में बनी हुई हैं। उत्तर प्रदेश में पार्टी व्हिप का उल्लंघन करके विधानसभा में 48 घंटों के विशेष रूप से आयोजित सत्र में हिस्सा लेने के बाद राज्य सरकार ने उन्हें वाई-श्रेणी की सुरक्षा मुहैया कराई है। कांग्रेस ने इस सत्र के बहिष्कार की बात कही थी। बहरहाल व्हिप का उल्लंघन करने के बावजूद उनका नाम 11 अहम सीटों के लिए होने वाले विधानसभा उपचुनाव के 40 स्टार प्रचारकों में शामिल है। कांग्रेस विधायी दल के नेता और अब राज्य इकाई के अध्यक्ष अजय कुमार लल्लू ने उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी करके उनसे पूछा था कि उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कदम क्यों न उठाया जाए? वह ऐसा नोटिस पाने वाली इकलौती विधायक थीं। सपा और बसपा ने व्हिप का उल्लंघन करके विधानसभा के विशेष सत्र में शामिल होने वाले विधायकों से कोई सवाल-जवाब नहीं किया। यह सत्र महात्मा गांधी की 150वीं वर्षगांठ के अवसर पर आयोजित किया गया था।

आपका पक्ष

पेड़ों की कटाई से काफी नुकसान

मुंबई में मेट्रो शेड के लिए पेड़ों की कटाई से पर्यावरण को नुकसान हुआ है। विकास के नाम पर पेड़ों की कटाई से भले ही सरल यातायात उपलब्ध हो जाएगा लेकिन दूषित हवा के कारण जब मनुष्य ही नहीं बचेंगे तब विकास का क्या अर्थ रह जाएगा। महाराष्ट्र सरकार की कथनी और करनी में भी विरोधाभास देखने को मिलता है। एक तरफ सरकार बसों पर बैनर लगाकर करोड़ों पौधे लगाने के लक्ष्य के बारे में कहती है तो दूसरी ओर पेड़ों के काटने का आदेश भी दे देती है। हमारी सभ्यता एवं संस्कृति में पेड़ों तथा नदियों को पूजा जाता है। देश में विकास कार्य जरूरी है और मुंबई की भीड़ वाले यातायात को सुगम बनाने की भी जरूरत है। मुंबई में जगह की कमी है और मेट्रो कार शेड के लिए अधिक जगह की जरूरत है लेकिन विनाश को नजरअंदाज कर विकास करना उचित नहीं है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी संयुक्त राष्ट्र की सभा में पर्यावरण को संरक्षित करने का बयान देते हैं लेकिन भारत में विकास के नाम पर कई पेड़ काट दिए जाते हैं। अदालत का रुख भी इस पर स्पष्ट नहीं दिखता है। बंबई उच्च न्यायालय जहां पेड़ों की कटाई की अनुमति दे देता है, वहीं उच्चतम न्यायालय पेड़ों की कटाई पर रोक लगा देता है। इस बीच सैकड़ों पेड़ काट दिए जाते हैं। आखिरकार पेड़ों की कटाई से होने वाला नुकसान मुंबई के लोगों को ही उठाना पड़ेगा। एक पेड़ सालभर में करीब 700 किलोग्राम ऑक्सीजन देता है। यह 20 टन कार्बन डाइऑक्साइड को सोखता है। पेड़ काटे जाने से मुंबई के लोगों को कितना नुकसान हुआ है इसका सही आकलन करना काफी कठिन कार्य है। अगर समय रहते पेड़ों को कटने से नहीं बचाया गया तो वह दिन दूर नहीं जब मानव सभ्यता का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।

सागर शुक्ला, मुंबई

मुंबई के गोरेगांव में स्थानीय लोगों ने पेड़ों की कटाई के विरोध में प्रदर्शन किया था

बाढ़ के बाद बीमारियों से बचाव

बाढ़ के बाद इससे होने वाली बीमारियों का खतरा बढ़ गया है। पटना में बाढ़ का पानी धीरे-धीरे कम हो रहा है लेकिन इसके साथ-साथ बीमार लोगों की संख्या भी बढ़ने लगी है। जलजमाव से मच्छर जनित बीमारियां फैलती हैं और पटना के लोग इसके शिकार होने लगे हैं। बिहार हर साल बाढ़ की चपेट में आ जाता है। राज्य में बाढ़ तभी आती है जब नदियों का जलस्तर तेजी से बढ़ने लगता है और तेज बहाव के कारण तटबंध टूटने लगते हैं। पिछले कई वर्षों में कई बार ऐसी बाढ़ आई है जो सबकुछ बहा ले गई है। अगर बाढ़ का अस्थायी समाधान नहीं निकाला गया तो बिहार का विकास नहीं हो सकेगा। हर साल बाढ़ आने से होने वाले नुकसान की भरपाई करना काफी मुश्किल हो जाता है। बिहार की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि अक्सर बाढ़ आ जाती है जिससे खेतों में खड़ी फसल बरबाद हो जाती है। कभी राज्य में सूखा पड़ जाता है जिससे फसल सूख जाती है। इससे किसानों को दोहरी मार झेलनी पड़ती है। बाढ़ और सूखा कृषि प्रधान राज्य बिहार की अर्थव्यवस्था को नुकसान पहुंचाते हैं। इसके समाधान के लिए राज्य सरकार के साथ केंद्र सरकार को भी स्थायी समाधान निकालने की जरूरत है।

अनु मिश्रा, सीवान

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।